Research Paper E-ISSN NO : 2455-295X | VOLUME : 9 | ISSUE : 10 | OCTOBER 2023

सांख्य दर्शन का सैद्धांतिक पक्ष : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ. मुन्ना लाल चौहान [1]

[1] **अतिथि सहायक आचार्य -संस्कृत, राजसेस सोसाइटी अधीन -विद्या सम्बल योजना के अंतर्गत- राजकीय महाविद्यालय, देसूरी जिला -पाली, राजस्थान -306703**

ABSTRACT:

भारतीय दर्शन में सर्वमान्य षड्दर्शनों में सांख्य का विशिष्ट स्थान है। पाश्चात्य विद्वान मैक्समूलर ने अद्वैत वेदान्त के पश्चात् सांख्य दर्शन को ही हिन्दुओं का प्रमुख दर्शन स्वीकार किया है। कपिल मुनि को सांख्य दर्शन का प्रवर्तक माना जाता है। जिन्हे भागवत् पुराण" विख्यात 24 अवतारों में से एक मानता है। कपिल के नाम का उल्लेख श्वेताश्वर उपनिषद, भगवतगीता", महाभारत के शान्ति पर्व के साथ भारतीय वांड्मय में अन्यत्र अनेक स्थानों में सम्मानजनक स्थिति में देखा जा सकता है। उपनिषदों की नाना शिक्षाओं में सांख्य दर्शन के प्रमुख सिद्धांत भरे पड़े हैं जो इस दर्शन की प्राचीनता एवं श्रेष्ठता को उद्घोषित करते है। गीता में सांख्य शब्द का प्रयोग ज्ञाननिष्ठा के वाचक रूप में अनेको जगह मिलता है। गार्वे के अनुसार सांख्य योगदर्शन की शिक्षाऐं ही लगभग पूर्ण रूप में भगवद्गीता के दार्शनिक विचारों का आधार हैं। महाभारतकार ने भी इसका साक्ष्य दिया है – "ज्ञानम् च लोके यदिहास्ति किचित सांख्यागतं तच्च महन्महात्मन्"। शान्ति पर्व में पंचशिख और जनक, सुलभा और जनक, याज्ञवल्क्य और देवराति जनक के सम्वाद के रूप में सांख्य के सिद्धान्तों का काव्य शैली से उल्लेख हुआ है। महाभारतकार ने सांख्य की महत्ता के सम्बन्ध में यहाँ तक कह दिया कि "नास्तिसांख्य समं ज्ञानम् नास्ति योगसम् वलम् अत्रयः संशयों मा भूतज्ञानं सांख्य परम् स्मृतमं । मनुस्मृति में तो सांख्य सिद्धान्त के आधार पर ही जगत् की उत्पत्ति वर्णित है। यद्यपि मनु सांख्य का नाम नहीं लेते। छान्दोग्य उपनिषद में सर्वप्रथम सांख्य के प्रमुख सिद्धान्त सत्कार्यवाद का वर्णन "सदैव सौम्यो मग्मासीत् एकामेवा द्वितीयम् इस मंत्र में मिलता है। "महत परमवक्तम व्यक्तापुरूष परापुरुषान्नं परम् किंचित्सा काष्ठ सा परागति। -इस कठोपनिषद् मंत्र में अव्यक्त एवं पुरूष का वर्णन उपलब्ध होता है। श्वेताश्वरोपनिषद् के बारे में विद्वजनों की मान्यता ही है कि, यह वास्तव में सांख्य उपनिषद है। प्रकृति के तीनों गुणों तथा उसकी पुरूष से भिन्नता का अत्यन्त मनोहारी विवेचन इसमें देखा जा सकता है। जो संख्या सिद्धांतों का परिदर्शन है ।

KEYWORDS:

सांख्य दर्शन, सैद्धांतिक पक्ष, विश्लेषणात्मक अध्ययन, तत्व मीमांसा ।

आलेख प्रस्तुति

भारतीय दर्शन परम्परा में सांख्य दर्शन अत्यन्त प्राचीनतम सम्प्रदायों में परिगणित है। इसकी प्राचीनता इस तथ्य से सिद्ध है कि इसके सिद्धान्त बीज रूप में मनुस्मृति, महाभारत, रामायण, पुराणों, उपनिषदों तथा यहाँ तक कि ऋग्वेद में भी मिलते है। ऋग्वेद में कहा गया है -"दक्षस्यवादिते: जन्मनिव्रते राजानां मित्रावरुणा विवाससि । अव्रतपन्थाः पुरूरथो अर्यमा सप्त होता विषुरूपेषु जन्मसु"।

सांख्य दर्शन में 25 तत्व

अन्यान्य भारतीय दर्शनों की भाँति सांख्य भी मोक्ष को मानव जीवन का चरम पुरूषार्थ स्वीकार करता है। अपनी दार्शनिक मीमांसा में सांख्यकार मोक्ष प्राप्ति के लिये दुःखों की निवृत्ति आवश्यक मानता है। वह दुःखों को तीन श्रेणियों में विभाजित करता है

1 आध्यात्मिक दुःख, जो जीव के अपने शरीर या मन से उत्पन्न होता है।

2 आधिभौतिक दुःख, जो बाह्य भौतिक पदार्थों के कारण उत्पन्न होता है।

3 आधिदैविक दुःख, जो वाह्य अलौकिक कारण से उत्पन्न होता है।

मोक्ष प्राप्ति का मार्ग इनकी निवृत्ति से ही होकर आता है। लेकिन यह निवृत्ति कैसे होगी के प्रश्न पर सांख्यकारों का कथन है कि तत्व ज्ञान ही निवृत्ति का परम साधन है।ईश्वर कृष्ण अपनी दूसरी कारिका में कहते है दुःखत्रय का विनाश व्यक्त, 'अव्यक्त और ज्ञ इन तीनों के विज्ञान अथवा विवेक या ज्ञान से होता है-

"दृष्टवदानुश्रविको सहयविशुद्वित्तक्षयातिशय युक्तः।

तद्विपरितः श्रेयान व्यक्ताव्यक्तसविज्ञानात्"।।

इससे स्पष्ट है कि सांख्य दर्शन में व्यक्त', 'अव्यक्त' और 'ज्ञ ये तीन तत्व माने गये हैं। इन तत्वों को समझने के लिये यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि इन तत्वों में एक तत्व चेतन है, जिसे 'ज्ञ या पुरुष भी कहते हैं और अवशिष्ट दोनों व्यक्त और 'अव्यक्त' जड़ हैं। पुरुष निष्क्रिय, निर्गुण, निर्लिप्त है। अन्य दोनों तत्व त्रिगुण, अविवेकीय आदि धर्मों से युक्त हैं। यही तीनों तत्व सूक्ष्म जगत के पदार्थ हैं। सांख्य दर्शन में 25 तत्वों को व्यक्त, अव्यक्त और ज्ञ के रूप में विभाजित किया गया है। यद्यपि कारण रूप में सांख्य दर्शन केवल -प्रधान एवं पुरुष, इन दो तत्वों को अनादि एवं अनन्त मानता है। तथापि व्यक्तावस्था के विभिन्न पदार्थों को भी प्रकृति रूप मानने के कारण इन्हें 'तत्व' माना गया है। इस प्रकार 'व्यक्त की भी तत्व के अन्तर्गत गणना करने पर सांख्य में 25 तत्वों का वर्णन मिलता है। इन 25 तत्वों को ईश्वर कृष्ण ने एक दूसरी कारिका में प्रकृति, प्रकृति-विकृति, विकृति एवं न प्रकृति न विकृति इन 4 वर्गों में विभाजित करके स्पष्ट करने की चेष्टा की है-

"मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्या: प्रकृतिविकृतयः सप्त ।

षोडशकस्तु 'विकारो न प्रकृतिर्ना विकृतिः पुरुषः ॥

इस प्रकार सांख्य के अनुसार 25 तत्व हैं जिसके जानने से किसी भी आशय का पुरूष चाहे वह ब्रह्मचारी हो, सन्यासी हो या गृहस्थ हो, दुःखों से अवश्यमेव मुक्ति प्राप्त कर सकता है।

प्रकृति का स्वरूप

प्रकृति में प्र का अर्थ है पूर्व (Before) तथा कृति का अर्थ है रचना (Creation) अर्थात सृष्टि रचना के पूर्व। दूसरे शब्दों में सृष्टि के पहले जो सत्ता विद्यमान हो उसे प्रकृति कहते हैं। श्वेताश्वर उपनिषद में प्रकृति को अजा (उत्पत्ति रहित), एक. त्रिगुणात्मिका, सरूपा और समस्त वस्तुओं को पैदा करने वाली कहा गया है। वह प्रधान, 'अव्यक्त' और शाश्वत कही गयी है। लोकाचार्य के अनुसार यह समस्त विकारों को पैदा करती है। अतः प्रकृति ज्ञान विरोधी होने के कारण अविद्या तथा विचित्र सृष्टि की रचना करने के कारण माया कहलाती है -प्रकृति इत्युच्यते विकारोत्पादकत्वात् अविद्या ज्ञान विरोधित्वात माया विचित्र सृष्टि करत्यात " अचेतन तत्व के कारण उसे जड़ कहते है। गतिशील और क्रियाशील होने के कारण वह शक्ति कहलाती है। चूंकि सम्पूर्ण जगत प्रकृति से ही प्रसूत है। अतः वह प्रसवधर्मिणी भी है।

प्रकृति के द्विविध परिणाम

त्रिगुणी प्रकृति विषयक विवेचन में साख्यकार दो प्रकार के परिणामों का उल्लेख करते हैं। सांख्य का मत है कि परिणाम गुणों का स्वभाव है, वे प्रतिक्षण परिणत होते रहते है। बिना परिणाम के एक क्षण भी नहीं रह सकते, क्योंकि यदि उनमें एक क्षण के लिये भी परिणाम रूक जाये तो यह पुनः आरम्भ नहीं हो सकता। ये दो है प्रथम-सदृश परिणाम (सरूप) द्वितीय-विसदृश परिणाम (विरूप)।

प्रथम स्थिति प्रलयावस्था की है, जिसमें प्रत्येक गुण अन्य गुणों से पृथक होकर स्वतः अपने

में परिणित हो जाता है। अर्थात् सत्य - सत्य में, रजस - रजस में, और तमस - तमस में।

इस अवस्था में कोई कार्य (वस्तु) उत्पन्न नहीं होता है क्योंकि कोई गुण अकेले परिणामित होकर भी किसी वस्तु को उत्पन्न नहीं कर सकता।

विरूप परिणाम सृष्टि की अवस्था में होता है। इस अवस्था में अव्यक्त तीनों गुणों के मिश्रित रूप से कार्य करता है। यह स्थिति तब आती है जब पुरुष के संयोग से प्रकृति की साम्यावस्था में क्षोभ उत्पन्न होता है।

गुण

सांख्य की प्रकृति गुणों की साम्यावस्था (सत् रज एवं तम) ही की एक अन्य संज्ञा है। जैसा कि गौडपाद ने अपनी टीका में स्पष्ट कहा है कि सत्वरजस्तमसा साम्यवस्था प्रधानम्।" जब प्रकृति की यह साम्यावस्था पुरूष संसर्ग से भंग होती है। तब प्रकृति के इन तीनों गुणों के समुदाय अर्थात एक साथ प्रवृत्त होने से महत् आदि की सृष्टि होती है। जिस प्रकार हिमालय की गोद से क्रीड़ा करने वाले गंगा के अनेकों स्रोत गंगोत्री के निकट उद्गम स्थान पर आकर एक साथ प्रवाहित होते हुये गंगा की उत्पत्ति करते है। उसी प्रकार प्रकृति के तीनों गुण परस्पर मिश्रित होकर सृष्टि की रचना करते हैं।

पुरुष का स्वरूप, प्रयोजन एवं महत्व -

भारतीय दर्शन में सांख्य दर्शन एक द्वैतवादी विचारधारा के रूप में आख्यात है। जिसमें दो परस्पर स्वतन्त्र और निरपेक्ष तत्व स्वीकार किये जाते हैं। वे हैं-पुरुष और प्रकृति जिस सत्ता या तत्व को अन्यान्य भारतीय दर्शन आत्मा नाम देते हैं, वहीं सांख्य इसे पुरूष संज्ञा से अभिहित करता है। इस प्रकार जहाँ भारतीय दार्शनिक परम्परा आत्मा, आत्मा के अस्तित्व के सम्बन्ध में एकमत है, वहीं उसके स्वरूप के विषय में मतान्तरण है। भौतिकवादी चार्वाक स्थूल शरीर को ही आत्मा मानते हैं, उसकी दृष्टि में "चैतन्य विशिष्ट शरीर' ही आत्मा है। कतिपय सम्प्रदायों में इन्द्रिय, मन एवं बुद्धि को ही आत्मा कहा जाता है। न्याय-वैशेषिक दर्शन एवं मीमांसा दर्शन का प्रभाकर सम्प्रदाय आत्मा को अचेतन द्रव्य मानता है और चेतना को उसका आकस्मिक गुण। भट्ट मीमांसा में आत्मा को एक चेतन द्रव्य माना जाता है। जो अंशत: अज्ञान के आवरण से ढका रहता है। जैन दर्शन के अनुसार आत्मा एक द्रव्य है एवं चेतना उसका नित्य धर्म (गुण)। इस प्रकार जैन दर्शन की दृष्टि में आत्मा एवं चेतना में द्रव्यगुण सम्बन्ध है। बौद्ध दर्शन क्षणिक चेतना के प्रवाह (The stream of momentary consciousness) को आत्मा कहता है। अद्वैत आत्मा को सच्चिदानन्द स्वरूप स्वीकार करता है। सांख्य दर्शन का पुरुष शरीर इन्द्रिय मन एवं बुद्धि से भिन्न है, क्योंकि ये तत्व जड़ प्रकृति के विकार होने के कारण जड़ एवं अनात्म है और पुरुष प्रकृति (अव्यक्त) एवं उसके विकारों (व्यक्त) से भिन्न है। पुरूष चैतन्य स्वरूप है, चेतना पुरुष का गुण नहीं है, अपितु स्वरूप है। इस कारण आत्मा कोई द्रव्य नहीं है जिसका लक्षण चेतना है। इस प्रकार पुरुष जैन दर्शन के आत्म तत्व (जीव) से भी भिन्न है।पुरूष बौद्ध दर्शन के प्रतिक्षण परिवर्तनशील विज्ञानों के प्रवाहमात्र से भी भिन्न है। क्योंकि यह एक नित्य और अपरिवर्तनशील तत्व है सांख्य दर्शन पुरूष को सच्चित्स्वरूप तो स्वीकार करता है, किन्तु आनन्दस्वरूप नहीं मानता है, क्योंकि आनन्द प्रकृति के सत्व गुण से उत्पन्न होता है। अतः वह पुरुष का स्वरूप नहीं हो सकता। इस प्रकार पुरूष अद्वैत वेदान्त के आत्म तत्व से भी भिन्न है। वेदान्त के अनुसार जीव विशुद्ध आत्मा या ब्रह्म का आभास मात्र है, जबकि सांख्य के अनुसार जीवात्मा यथार्थ और अनेक है। इस प्रकार पुरूष अद्वैत वेदान्त के आत्म तत्व से भी भिन्न है।

सांख्य दर्शन में पुरूष का स्वरूप प्रकृति के सर्वथा विपरीत है। प्रकृति के विरूद्ध धर्मी होने के कारण पुरुष त्रिगुणातीत, विवेकी विषयी ज्ञाता, विवित्त, विशेष चेतन और अपरिणामी है।पुरूष कोई द्रव्य नहीं है जिसका लक्षण चेतना है, बल्कि चैतन्य उसका स्वभाव है। इस कारण वह शरीर इन्द्रिय, मन, बुद्धि और अहंकार से भिन्न है। वह साक्षी है, निष्क्रिय या उदासीन है। कूटस्थ, नित्य एवं अपरिवर्तनशील है। त्रिगुणातीत होने के कारण यह पुरूष न किसी ज्ञान का विषय है, न किसी क्रिया का कर्ता है और न किसी कर्म-फल का भोक्ता है। सांख्य के अनुसार विषयत्व कर्तृत्व एवं भोक्तृत्व ये सब गुणों में ही होते हैं, पुरूष में नहीं। पुरूष तो इन सब क्रियाओं के बीच एक मध्यस्थ के समान साक्षी रूप में वर्तमान रहता है।

"तस्माच्च विपर्यासात सिद्धं साक्षित्वमस्य पुरुषस्य ।

कैवल्य माध्यस्य दृष्टेत्व कर्तृभावश्च" ॥

पुरूष के अस्तित्व की सिद्धि –

पुरूष का अस्तित्व निर्विवाद है। "मैं" और "मेरा" सभी के स्वाभाविक अनुभव है। कोई भी अपने अस्तित्व से इन्कार नहीं कर सकता। उसका अस्तित्व स्वयं सिद्ध है। उसकी सिद्धि पुनरुक्ति मात्र है। उसका निषेध भी असम्भव है, क्योंकि जो निराकर्ता है वही उस आत्म तत्व का स्वरूप है। वह स्वयं प्रकाश्य है और उसे प्रकाशित करने या सिद्ध करने के लिये किसी अन्य की आवश्यकता नहीं है। (It is self luminous and self proved)

सांख्य में पुरुष का प्रतिपादन करने वाली युक्तियाँ निम्नलिखित कारिका में दी गयी है-

"संघात परार्थत्वात् त्रिगुणादिविपर्ययादधिष्ठानात्।

पुरुषोऽस्ति भोक्तृभावात् कैवल्यार्थ प्रवृत्तेश्य"॥

पुरूष बहुत्व की सिद्धि

सांख्य के अनुसार सभी शरीरों में एक ही पुरूष (आत्मा) न होकर भिन्न-भिन्न पुरुष विद्यमान है। जबकि अद्वैत वेदान्त के अनुसार सभी शरीरों में एक ही आत्मा है जो शरीर रूपी उपाधियों में भेद होने के कारण भिन्न-भिन्न प्रतीत होते हैं। सांख्य दर्शन का यह विचार जैन, मीमांसा एवं रामानुज के विशिष्टाद्वैत से मिलता है।जितने जीव उतने पुरुष अर्थात पुरुष अनेक है इसको स्पष्ट करने के लिये सांख्यकारिकाकार निम्नलिखित अनुमानात्मक प्रमाण प्रस्तुत करते हैं-

"जनन मरण करणानां प्रतिनियमादयुगपत्प्रवृत्तेश्च।

पुरुषबहुत्वं सिद्धं त्रैगुण्यविपर्ययाच्चैव॥

सांख्य दर्शन की सृष्टि प्रक्रिया

सांख्यकारों के अनुसार सृष्टि से पहले जगत प्रलयावस्था में था। यह ऐसी अवस्था थी जिसमें तीनों गुण अपनी साम्यावस्था में थे। इसमें तीनों गुण एक दूसरे से बिल्कुल पृथक होते है। साम्यावस्था में सत्व-सत्व में रजस रजस में, तमस तमस में व्यवस्थित हो जाता है। यह साम्यावस्था ही प्रकृति है। जब प्रकृति और पुरूष का संयोग हुआ तो प्रकृति में क्षोभ उत्पन्न हुआ। इस क्षोभ के परिणाम स्वरूप गुणों में असंगत संयोग होने लगा। इसी संयोग के परिणाम स्वरूप बहुरूपी (Manifold) जगत् की रचना हुयी। प्रकृति में धीरे-धीरे विकास होने लगा और सक्रिय होती गयी। गुणों का स्वभाव सदैव मिलना बिछुड़ना और फिर मिलना है। इनके मिलने और बिछुड़ने से ही विभिन्न विशेषताओं से युक्त वस्तुओं का जन्म होता है। इस व्यावहारिक जगत में जितनी शक्ति या क्रियाशीलता मिलती है। उसका कारण रजोगुण है। समस्त पदार्थों की स्थिरता (Stability) का कारण तमोगुण है और सभी चेतन परिवर्तनों का कारण सतोगुण है।

सत्कार्यवाद

सांख्य दर्शन अपने सबसे प्रौढ़ एवं वैज्ञानिक सिद्धान्त सत्कार्यवाद के मण्डन की ओर प्रवृत्त होता है। वह कहता है-कार्यों में परस्पर की अनुरूपता इस बात को बताती है कि उन सबके मूल में कोई एक तत्व है जिससे ये सब उत्पन्न हुये है। इतना ही नहीं कार्य कारण का ही परिणाम है। इसका अभिप्राय यह है कि कार्य अपनी उत्पत्ति के पूर्व भी अपने कारण में विद्यमान रहता है और कारण व्यापार होने पर प्रगट हो जाता है। इस प्रकार कार्य का आविर्भाव, उद्भव या विकास और तिरोभाव, अनुद्भाव हुआ करता है, नयी उत्पत्ति और विनाश नहीं। क्योंकि न तो कोई प्रारम्भ नया प्रारम्भ होता है, अर्थात ऐसी कोई वस्तु विकसित नहीं हो सकती, जो प्रारम्भ में किसी रूप में अन्तर्निहित न हो और न कोई विनाश पूर्ण विनाश ही क्योंकि उनका प्रत्यक्ष ज्ञान योगियों को होता है। सूक्ष्म रूप से अपने कारण में वर्तमान कार्य का आविर्भाव ही उसकी उत्पत्ति तथा कारण में पुनः तिरोभाव ही उसका विनाश है। अर्थात भेद केवल अवस्था या प्रकटीकरण का है। आकार (Form) एवं धर्म (Merit) का है। तात्विक रूप से दोनों अभिन्न है अर्थात एक ही वस्तु की भिन्न रूपों में प्रतीतियाँ उसे वास्तविक रूप में भिन्न नहीं बना सकती। अर्थक्रिया की व्यवस्था वस्तु के भिन्न होने का कारण नहीं है। एक ही अग्निदाहक, पाचक और प्रकाशक होने से अनेक नहीं हो जाती। इसके विपरीत अनेक मृत्यु मिलकर पालकी ढोने का काम करते है, उससे वे सब अभिन्न नहीं हो सकते। इसी तरह घड़ा अपने गुणों, धर्मो के कारण मिट्टी कारण से भिन्न हैं, क्योंकि पानी रखने का काम मिट्टी से नहीं बल्कि घड़े से किया जाता है, फिर भी दोनों सार रूप से मिट्टी ही है। इसीलिये साख्यकारों को भेद सहिष्णु अभेदवादी भी कहा जाता है। वास्तव में सृष्टि का विकास एवं लय एक ही तत्व के दो पहलू हैं। चूँकि कार्य, कारण में सत् है। सत् से सत् की उत्पत्ति होती है, अतः इस सिद्धान्त का नाम 'सत्कार्यवाद पड़ा।

सत्कार्यवाद के प्रतिपादन हेतु ईश्वर कृष्ण विरचित सांख्यकारिका में निम्नलिखित युक्तियाँ एक ही कारिका में दी गयी है।

"असद्करणादुपादानग्रहणात् सर्वसम्भवाभावात्।
शक्तस्य शक्यकरणात् कारणभावाच्च सत्कार्यम्।"

निष्कर्ष

स्पष्ट है कि सांख्य दर्शन की प्राचीनता तो निर्विवाद है ही उसके सिद्धांतों की महत्ता को भी किसी दृष्टिकोण से कमतर नही आंका जा सकता। सांख्य दर्शन अधिकांश भारतीय विचारों, चाहे वह चिकित्सा शास्त्र, नीति शास्त्र सौन्दर्य शास्त्र मोक्षशास्त्र ही क्यों न हो यह समस्त का आधार है। उसका त्रैगुण्यवाद प्रायः सभी भारतीय दर्शनों में स्वीकृत है और यही भारतीय नीति शास्त्र तथा चिकित्सा शास्त्र का आधार है। सांख्य ने पुरुष को मूलतः दृष्टा और भोक्ता माना है। इससे ज्ञान मूलक भोगवाद का सूत्रपात हुआ, जिसका विकास कालान्तर में सौन्दर्य शास्त्र में हुआ है। सौन्दर्य शास्त्री भट्टनायक साख्य दार्शनिक थे और उन्होंने सांख्य शास्त्र के अनुसार सौन्दर्य तथा रस की व्याख्या की है। सांख्य ने प्रधान कारणवाद या प्रकृतिवाद को एक सुसंगत सिद्धान्त के रूप में स्थापित किया। उसने प्रकृति के विकास या परिणाम प्रस्तावित करके विकासवाद के सिद्धान्त का प्रवर्तन किया है जिसका विशेष प्रचार आधुनिक युग में पश्चिमी देशों में हुआ है। प्रकृतिवाद के साथ ही साथ सांख्य ने पुरुषवाद या आध्यात्मवाद को भी मान्यता दी है। उसने जैसे प्रकृति विज्ञान के मूल का वर्णन किया है वैसे ही उसने पुरुष विज्ञान व आध्यात्मज्ञान का भी विवेचन किया है। इसी कारण साख्य दर्शन द्वैतवादी है और विश्व के द्वैतवादी दर्शनों में अपने सिद्धांतों के कारण मूर्धन्य है।

REFERENCES

1. भारतीय दर्शन : डॉक्टर उमेश मिश्र, हिंदी समिति सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश लखनऊ द्वितीय संस्करण सन 1964
2. भारतीय दर्शन : श्री बलदेव उपाध्याय शारदा मंदिर वाराणसी सन 1971
3. भारतीय दर्शन का परिचय : श्री सतीश चंद्र चट्टोपाध्याय एवं श्री धीरेंद्र मोहन दत्त, अनुवादक हरिमोहन झा एवं नित्यानंद मिश्रा, पुस्तक भंडार पटना सन 1961
4. भारतीय दर्शन की रूपरेखा : श्री एम हरियिन्ना, अनुवादक डॉ० गोवर्धन भट्ट, श्री सुखबीर चौधरी, श्रीमती मंजुलता गुप्त, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, द्वितीय संस्करण।
5. भारतीय दर्शन सार : श्री बलदेव उपाध्याय, सस्ता साहित्य मंडल नई दिल्ली।
6. भारतीय दर्शन का इतिहास : एस०एन० दासगुप्त, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी जयपुर, सन 1972
7. भारतीय दर्शन : एन० के० देवराज, हिंदी ग्रंथ अकादमी उत्तर प्रदेश।
8. भारतीय दर्शन : आचार्य बलदेव उपाध्याय, चौखंबा औरिन्टालिया, वाराणसी।
9. सांख्यकारिका गौड़पाद भाष्य सहित : संपादक डॉ० हरदत्त शर्मा, ओरिएंटल बुक एजेंसी, पुणे सन 1933
10. सांख्यकारिका तत्व प्रभाव एवं युक्ति दीपिका सहित : संपादक बालकृष्ण त्रिपाठी, प्रथम संस्करण सन 1970
11. सांख्य दर्शन की ऐतिहासिक परंपरा : डॉ० आद्याप्रसाद मिश्र, सत्य प्रकाशन इलाहाबाद सन 1975
12. सांख्य सूत्रम अनिरुद्ध वृत्ति सहित, : प्राच्य भारतीय प्रकाशन, वाराणसी प्रथम संस्करण सन 1964
13. सांख्य तत्व कौमुदी : बालराम उदासीन कृत हिंदी टीका सहित, श्री राम मुद्रणालय गया, संवत 1887
14. सांख्य दर्शन का इतिहास : श्री उदयवीर शास्त्री, श्री विरजानंद, वैदिक संस्थान सन 1950